

राजस्थान उच्च न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. आपराधिक विविध (याचिका) संख्या 8225/2024

- हीरा लाल पुत्र किशनाराम, निवासी दरीबा, पुलिस थाना नीम का थाना, जिला सीकर।
- रामेश्वर पुत्र किशनाराम, उम्र लगभग 58 वर्ष, निवासी दरीबा, पुलिस थाना नीम-का-थाना, जिला सीकर।
- बाबूलाल पुत्र किशनाराम, उम्र लगभग 50 वर्ष, निवासी दरीबा, पुलिस थाना नीम-का-थाना, जिला सीकर।

----याचिकाकर्ता

बनाम

- राजस्थान राज्य, लोक अभियोजक के माध्यम से प्रतिनिधित्व।
- बंशी पुत्र प्रभु माली, निवासी दरीबा, पुलिस थाना नीम का-थाना, जिला सीकर।

----उत्तरदाता

याचिकाकर्ता(ओं) के लिए	:	श्री.रिनेश कुमार गुप्ता एवं श्री सौरभ प्रताप सिंह
उत्तरदाता (ओं) के लिए	:	श्री राम धनखड़, पीपी

न्यायमूर्ति श्री अनूप कुमार ढांड
आदेश10/12/2024रिपोर्ट योग्य

- इस याचिका में कानूनी मुद्दे हैं: (ii) "क्या आरोप तय करने का आदेश अंतरिम है या अंतिम प्रकृति का है? और (iii) क्या आरोप तय करने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, से संपर्क किया जाना चाहिए?" इसी पृष्ठभूमि में, इस याचिका में शामिल मुद्दों पर निर्णय लिया जाना आवश्यक है।
- इस याचिका के माध्यम से पुलिस स्टेशन नीम का थाना, जिला सीकर में दर्ज एफआईआर संख्या 818/2010 को चुनौती दी गई है तथा आपराधिक मामला संख्या 604/2011 में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या 2, नीम का थाना, जिला सीकर द्वारा पारित दिनांक 17.09.2024 के आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 467, 468, 471 और 120-बी के तहत आरोप

तय किए गए हैं।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि वर्ष 1989 में घटित कथित घटना के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध वर्ष 2010 में, अर्थात् 21 वर्ष से अधिक की देरी के बाद, रिपोर्ट दर्ज की गई। अधिवक्ता ने दलील दी कि दोनों पक्षों के बीच एक दीवानी विवाद लंबित है, जिसके लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध बहुत देरी से झूठी प्राथमिकी दर्ज की गई ताकि इसे आपराधिक मामले का रंग दिया जा सके। अधिवक्ता ने दलील दी कि उक्त प्राथमिकी के परिणामस्वरूप नकारात्मक अंतिम रिपोर्ट प्राप्त हुई, क्योंकि जाँच एजेंसी का भी यही मत था कि यह मामला दीवानी प्रकृति का है।

4. वकील ने दलील दी कि इसके बाद, शिकायतकर्ता द्वारा एक विरोध याचिका प्रस्तुत की गई, याचिकाकर्ता के विरुद्ध संज्ञान लिया गया और अब, उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 468, 471 और 120-बी के अंतर्गत आरोप तय किए गए हैं। वकील ने दलील दी कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक है।

5. वकील ने दलील दी कि आरोप तय करने का आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का है और यह सीआरपीसी की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण योग्य नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, 2018 (16) एससीसी 299** मामले में पारित निर्णय का हवाला दिया है।

6. इसके विपरीत, विद्वान लोक अभियोजक ने प्रार्थना का विरोध किया।

7. बार में प्रस्तुत किए गए तर्कों को सुना और उन पर विचार किया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

8. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध नीम का थाना, जिला सीकर में एफआईआर संख्या 818/2010 दर्ज की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2010 में ही नकारात्मक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। उसके बाद, याचिकाकर्ता के विरुद्ध संज्ञान लिया गया और वह निचली अदालत में मुकदमे का सामना कर रहा है और अब, उपरोक्त अपराधों के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप तय किए गए हैं। उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ताओं ने इस आदेश और संपूर्ण कार्यवाही की वैधता को चुनौती देते हुए इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है।

9. एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आरोप-निर्धारण का आदेश न तो विशुद्ध रूप से

एक अंतरिम आदेश है और न ही अंतिम आदेश है और इसे सीआरपीसी की धारा 397 या 482 या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के माध्यम से उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। यह भी माना गया है कि आरोप-निर्धारण आदेश को चुनौती केवल दुर्लभतम मामले में ही दी जानी चाहिए, ताकि अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट त्रुटि को ठीक किया जा सके, न कि मामले पर पुनर्विचार किया जा सके। पैरा 27 में निम्नलिखित निर्णय दिया गया है:-

"इस प्रकार, भले ही विभिन्न परिस्थितियों से निपटने में, यह मानते हुए कि आरोप तय करने वाला आदेश एक अंतरिम आदेश था और इसमें धारा 397(2) या यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली टिप्पणियां की गई हों, मधु लिमये मामले में प्रतिपादित सिद्धांत अभी भी लागू है। आरोप तय करने वाले आदेश को पूरी तरह से एक अंतरिम आदेश नहीं माना जा सकता है और किसी दी गई स्थिति में इसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(2) या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप किया जा सकता है, जो एक संवैधानिक प्रावधान है, लेकिन आरोप तय करने वाले आदेश में हस्तक्षेप करने और स्थगन देने की उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण स्थिति में ही किया जाना है।"

10. इस कानून के सिद्धांत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 4 एस.सी.सी 551** मामले में प्रतिपादित किए गए हैं और आज भी मान्य हैं। यह माना गया है कि आरोप निर्धारण या आरोपमुक्ति से इनकार करने के आदेश न तो अंतरिम हैं और न ही अंतिम प्रकृति के हैं और इसलिए, ये दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(2) के प्रतिबंध से प्रभावित नहीं हैं। अतः, यह स्पष्ट है कि आरोप निर्धारण के आदेश के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण याचिका पोषणीय है।

11. उपरोक्त तर्क को **संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में 2022 (15) एस.सी.सी 720** में पुनः दोहराया गया है और इसे पैरा 14 में निम्नानुसार माना गया है:-

14. मधु लिमये (सुप्रा) में निर्धारित विधि की सही स्थिति यह है कि

आरोप विरचित करने या आरोपमुक्त करने से इनकार करने वाले आदेश न तो अन्तरवर्ती हैं और न ही अंतिम प्रकृति के हैं और इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(2) के प्रतिबंध से प्रभावित नहीं होते। इसके अलावा, इस न्यायालय ने उपर्युक्त मामलों में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उच्च न्यायालय को प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या व्यक्तिगत मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने का अंतर्निहित अधिकार प्राप्त है। एक चेतावनी के रूप में यह कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय को अपने पूर्वोक्त अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रभावी और समयबद्ध प्रशासन के लिए उच्च न्यायालय में निहित विवेक का सावधानीपूर्वक और विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए। फिर भी, यह न्यायालय पूरी तरह से हस्तक्षेप न करने की अनुशंसा नहीं करता है। यद्यपि, असाधारण मामलों में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए, अन्यथा नागरिक के अधिकारों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। उदाहरण के लिए, जब किसी शिकायत की विषयवस्तु या रिकॉर्ड में दर्ज अन्य कथित सामग्री यह एक निर्दोष व्यक्ति को सताने का निर्लज्ज प्रयास है, इसलिए न्यायालय के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोके।"

12. अब अगला प्रश्न यह है कि "क्या पुनरीक्षण याचिका इस न्यायालय के समक्ष रखी जाएगी या सत्र न्यायालय के समक्ष?"

13. आगे बढ़ने से पहले, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अंतर्गत निहित प्रावधान का संदर्भ लेना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

"397. पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अभिलेखों को मंगाना। (1) उच्च न्यायालय या कोई सत्र न्यायाधीश अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र में स्थित किसी अवर दंड न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही के अभिलेख को मंगा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह स्वयं को, अभिलिखित या पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या

आदेश की शुद्धता, वैधानिकता या औचित्य के बारे में, तथा ऐसे अवसर न्यायालय की किसी कार्यवाही की नियमितता के बारे में संतुष्ट कर सके, और ऐसा अभिलेख मंगाने के समय निर्देश दे सकता है कि किसी दंडादेश या आदेश का निष्पादन निलंबित कर दिया जाए, और यदि अभियुक्त परिरोध में है, तो अभिलेख की जांच लंबित रहने तक उसे जमानत पर या अपने स्वयं के बंधपत्र पर छोड़ दिया जाए।

(2) उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही में पारित किसी मध्यवर्ती आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा।

(3) यदि इस धारा के अधीन कोई आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश को किया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई अन्य आवेदन उनमें से किसी अन्य द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा।"

14. धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता का दायरा और दायरा उच्च न्यायालय के साथ-साथ सत्र न्यायालय को अभिलेख मंगाने और निचली अदालतों की कार्यवाहियों की शुद्धता, वैधता या औचित्य के संबंध में जांच करने के संबंध में समवर्ती शक्तियां प्रदान करता है।

15. **प्रणब कुमार मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और एआईआर 1959 एससी 144** में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियों पर विचार करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह माना कि यह एक विवेकाधीन शक्ति है जिसका प्रयोग न्याय की सहायता के लिए किया जाना चाहिए। अन्य बातों के साथ-साथ यह भी माना गया कि किसी दिए गए मामले में उच्च न्यायालय अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा या नहीं, यह उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदान की गई पुनरीक्षण शक्तियां, वादी के पक्ष में कोई अधिकार नहीं बनाती हैं, बल्कि केवल उच्च न्यायालय की यह सुनिश्चित करने की शक्ति का संरक्षण करती हैं कि न्याय आपराधिक न्यायशास्त्र के मान्यता प्राप्त नियमों के अनुसार किया जाए और अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण न करें या संहिता द्वारा उनमें निहित अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करें। उच्च न्यायालय प्रत्येक मामले में

पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करने, या एक बार आवेदन पर विचार करने के बाद प्रतिस्थापन का आदेश देने के लिए बाध्य नहीं है।

16. यह न्यायालय मानता है कि इस मामले में ऐसी कोई विशेष परिस्थितियाँ नहीं हैं जिनके लिए याचिकाकर्ता को सत्र न्यायाधीश के मंच को दरकिनार करके सीधे उच्च न्यायालय जाना पड़े। याचिकाकर्ता सत्र न्यायाधीश के समक्ष भी पुनरीक्षण याचिका दायर कर सकता था। यह उल्लेख करना उचित है कि पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से नहीं होता, बल्कि यह शक्तियों के दुर्लभ और संयमित उपयोग का मामला है। इसलिए, यदि याचिकाकर्ता के पास कथित अन्याय के निवारण के लिए दो मंच उपलब्ध हैं, तो उसके लिए निश्चित रूप से पहले निचले मंच का रुख करना अधिक उपयुक्त होगा। यह निश्चित रूप से उच्च मंच, अर्थात् इस न्यायालय के विवेकाधिकार में है कि वह इस बात पर विचार करे कि उसे ऐसी पुनरीक्षण याचिका पर विचार करना चाहिए या नहीं, जो सत्र न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है।

17. इसके अलावा, **नटवर लाल बनाम राज्य**, 2008 में रिपोर्ट किए गए **सी.आर. जे.एल. 3579 (3583) (राजस्थान)** में, राजस्थान उच्च न्यायालय ने **श्री पद्मनाभ केशव कामत बनाम श्री अनूप आर. कंटक एवं अन्य**, 1998 (5) **बॉम्बे सी.आर. 546** में रिपोर्ट किए गए पर भरोसा करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार निर्णय दिया:

"उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, पद्मनाभ केशव कामत मामले (सुप्रा) में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण, जो कि प्रणब कुमार मित्रा मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित है, संहिता की धारा 397 के दायरे और परिधि के संबंध में कानून का एक सही प्रस्ताव है और इसके आधार पर, मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जब दो मंच उपलब्ध हैं, तो निश्चित रूप से यह उचित है कि पक्षकार पहले निचले मंच का रुख करे, दुर्लभ और विशेष परिस्थितियों को छोड़कर। ऐसा करने से, मजिस्ट्रेट से आदेश प्राप्त करने वाले पक्षकार को दोहरा उपाय मिलेगा, सबसे पहले वह सत्र पुनरीक्षण न्यायालय का रुख करेगा, जो कि आपराधिक मुकदमे का सर्वोच्च न्यायालय है और सजा के आदेश की वैधता, औचित्य और शुद्धता की जाँच करने के बाद, सत्र न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आदेश में संहिता की धारा 397 के तहत किसी हस्तक्षेप की

आवश्यकता नहीं है, तब पक्षकार के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय का रुख करने का दूसरा उपाय भी है।"

18. इसलिए, उपरोक्त निर्णयों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दो न्यायालयों के बीच समवर्ती क्षेत्राधिकार के मामले में, यदि उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की जाती है, तो उक्त याचिका पोषणीय है, तथापि, याचिका पर विचार किया जा सकता है या नहीं, यह दिए गए मामले के तथ्यों को ध्यान में रखने के बाद, उच्च न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। अधिमानतः, पुनरीक्षण न्यायालय सत्र न्यायालय होगा, जो पुनरीक्षण याचिका पर विचार करने के लिए बाध्य होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत कार्यवाही की नियमितता सहित आदेश या सजा की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जांच के लिए किसी भी निचली अदालत के रिकॉर्ड की मांग कर सकता है। इस प्रकार, यह न्यायालय मानता है कि मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका सत्र न्यायालय के समक्ष दायर की जानी चाहिए थी क्योंकि इस न्यायालय को लगता है कि इस न्यायालय में सीधे पुनरीक्षण याचिका दायर करने के लिए कोई विशेष और असाधारण कारण नहीं बताए गए हैं।

19. यह न्यायालय पहले से ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अनेक आपराधिक विविध याचिकाओं से भरा पड़ा है। इसलिए, केवल इसलिए कि यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत याचिका पर विचार कर सकता है, सत्र न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को दरकिनार नहीं किया जा सकता। या उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय दोनों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अंतर्गत समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त है। याचिकाकर्ता द्वारा अपने विरुद्ध आरोपित आरोप निर्धारण आदेश के विरुद्ध याचिका पर विचार करने हेतु इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का आह्वान करने हेतु कोई असाधारण मामला नहीं बनाया गया है।

20. उपरोक्त कथन और माननीय सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका को याचिकाकर्ता को विधि के अनुसार विद्वान सत्र न्यायालय में याचिका दायर करने की स्वतंत्रता देते हुए खारिज किया जाता है। तथापि, इस न्यायालय में वर्तमान पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के कारण जो विलंब हुआ है, उसे सत्र न्यायालय क्षमा करेगा।

21. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने मामले के गुण-दोष पर विचार नहीं

किया है और इसमें की गई कोई भी अभिव्यक्ति मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के समान नहीं होगी।

22. स्थगन आवेदन और सभी आवेदन, यदि कोई लंबित हों, तो उनका भी निपटारा किया जाता है।

(अनूप कुमार ढांड),जे

आयुष शर्मा /19

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"



Tarun Mehra
Advocate